साहित्य और संस्कृति

सत्य और कल्याण के समन्वय ने ही साहित्य की रुपरेखा निर्धारित की है । मनुष्य ने जो भी सत्य पाया उसे भविष्य के लिए कल्याणकारी समझकर उसे सुरक्षी रखने की चेष्टा की जिससे मनुष्य की आनेवाली परम्पराएँ उससे पूर्ण लाभ उठा सके और एक प्रकाश स्तम्भ की भांति शताब्दियों के लम्बे पथपर अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित कर सके।[1]

मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए हर एक कार्य को करने के बाद भी उशके जीवन के अतृप्ति विश्व के साथ मानो अभेदक की अनुभूतिं प्राप्त करने की उत्सुक थी । अहंकार से घिर कर वह अपने क्षुद्रत्व के अवबोध से वह त्रस्त हुआ ज्योंहि विराट से एख होकर अपने भीतर की अनुभूति जगाने की व्यग्रता उसमें उत्पन्न हुई इशी व्यग्रता को वह भांति से शांत करने लगा यहीं से धर्म, कला सात्यि विज्ञान सभी उत्पन्न हुए ।[2] इन सभी की उत्पत्ति से मानव को कई दिशाएं दिखाइ दी उसकी अपने अनुभूतियाँ उसके अपने विचार उसकी मनो कामनाएं स्थायी स्वरुप प्राप्त करने लगे ।

मनुष्य की मनुष्य के साथ समाज के साथ राष्ट्र और विश्व के साथ इसी तरह स्वयं अपने साथ जो एक सुधर सामंजस्य सरलता सुसज्जता स्थापित करने की जो चेष्टा चिरकाल से चली आ रह है वही मनुष्य जाती की समस्त निधि की उपलब्ध मूल स्त्रोत है अर्थात मनुष्य के लिए जो कुछ उपयोगी मूल्यवान सारभूत आज है वह ज्ञात और अज्ञात रुप में उसी एक सत्य चेष्टा का प्रतिफल है [3] उस प्रक्रिया में मनुष्य जाति ने नाना भांति की अनुभूतियाँ का भोग किया है। सफलता विफलता की क्रिया की प्रतिक्रिया की हर्षशोक विस्मय आल्हाद- धृणा-और प्रेम सभी भांति की अनुभूतियाँ मनुय जाति के शरीर ने और इतिहास ने भोगी और वे जाति के जीवन और भविष्य में मिल गई मनुष्य ने उन्हें अपनाया और व्यक्त किया मंदिर बने तीर्थ बने घाट बने शास्त्र पुराण स्त्रोत ग्रन्थ बने शिला लेख लिखे गयें स्तम्भ खड़े हुए मुर्तियाँ बनी और स्तूप निर्मित हुए । मनुष्य ने अपने हृदय

के भीतर विश्व को यथासाध्य खीच कर जो जो अनुभूतियाँ पाई मिट्टी पत्थर धातु अथवा ध्वनि एवं भाषा आदिका उपादान ले उन्हें ही वस्तु तथ्य में ढाल कर उसे जाने की उसने चेष्टा की जिसके परिणाम स्वरुप हमारे पास ग्रन्थों का अटूट अपसिमित संग्रह है व धरोहर के साथ में क्या कुछ नहीं है ।

मानवजाति की इस अनन्त निधि में जितना भी कुछ भी है अनुभूति भण्डार लिपि बद्ध है वही साहित्य है और वही अक्षराकित रुप में जो अनुभूति संचय विश्व को प्राप्त रहेगा वही होगा साहित्य कहलायेगा ।[4] साहित्य एवं संस्कृति का सम्बन्ध देखने पर हमे यह ज्ञात होता है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं जो साहित्य लिखा जाता है उसमें संस्कृति की छाप होती है व संस्कृति को साहित्य के माध्यम से ही जाना जा सकता है ।

गोस्वामी तुलसी दास को भारतीय संस्कृति के व्याख्याता कवि और चिन्तक के रूप में केन्द्रिय स्थान प्राप्त है । तुलसी दासजी ने प्राचीन ग्रन्थों का[5] अध्ययन करके उनमें छुपी हुई भारतीय संस्कृति की अपने ग्रन्थों में पुनः जीवन प्रदान किया था ।

निश्चय ही उनका रामचरित मानस भारतीय संस्कृति धर्मचेतना तथा जातीय आदर्शों का विश्वकोष है ।[6]

हम संस्कृति को बान्ध कर नही रख सकते हैं । संस्कृति किसी एक व्यक्ति की धरोहर नही हो सकती है । उसका विकास कभी अविरूद्ध नही होता है वह अपने साथ सदैव नवीनता के लिए रहती है तभी तो कहा गया है ।

संस्कृति निरन्तर प्रवाह मान सतत विकसित तथा नवनवोन्मेषशालिनी जातीय प्रतिभा है ।[7] कहा गया है संस्कृति वह पुष्प है जो मानव विचाररूपी वृक्ष की पहचान होता है उसी प्रकार संस्कृति भी उस काल का परिचय होती है । इसी लिए संस्कृति संस्कारों के पुञ्ज का नामान्तर है ऐसा एलाचार्य विद्यानन्द मुनि ने कहा है । दूसरी

ओर सुमित्रानन्दपंत कहते हैं - संस्कृति को मै मानवीय पदार्थ मानता हूँ जिसमें हमारे जीवन के सूक्ष्म स्थल दोनों धरातलों के सत्यों का समावेश तथा हमारे उर्ध्व चेतना शिखर का प्रकाश और समदिक जीवन की मानसिक उपत्यकाओं की छायाएँ गुम्फित हुं । उसके भीतर अध्यात्म धर्म नीति से लेकर सामाजिक रूढि रीति तथा व्यवहारो का सौन्दर्य भी एक अन्तर सामंजस्य ग्रहण कर लेता है । संस्कृति को हमे अपने हृदय की शिराओं मे बहनेवाला मनुष्यत्व का रूधिर कहना चाहिए। लिंटन के अनुसार - संस्कृति समाज की विरासत है । इलियट ने संस्कृति को बड़ी व्यापक परिभाषा दी है -

शिष्ट व्यवहार ज्ञानार्जन कलाओं का सेवन इत्यादि के[8] अतिरिक्त किसी जाति अथवा राष्ट्र की वे सम्पूर्ण कियाएँ व कार्य जो उसे शिष्टता प्रदान करते हैं उसकी संस्कृति के अंग है, घुड़दौड़ नावों की प्रतियोगिता खानपान का प्रकार संगीत नृत्य इत्यादि[9] श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के अनुसार - किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरूषों में विचार वाणी एवं क्रिया जो रूप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है।

इन सभी परिभाषाओं के बाद संस्कृति शब्द को यदि हम व्यापक एवं सूक्ष्म अर्थ के रूप में देखे तो इसरे समझने के लिए हमे इसकी व्याख्या करनी आवश्यक होगी वैसे संस्कृति शब्द को अंग्रेजी शब्द Culture का समानार्थी माना जाता है क्योंकि संस्कृत शब्द उसी शब्द के लिए उपयोग में लिया गया है । कल्चर शब्द का अर्थ संस्कृति शब्द के सन्दर्भ मे लिया जाता है जिसके अनुसार डॉ. राधा कृष्णन ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए अखिल ऐशियायी शिक्षण परिषद मे कहा था कि -

स्कूलों तथा कालेजों में जो कुछ भी पढ़ा जाता है वह भुला देने के बाद जो शेष रह जाये वह कल्चर अर्थात् संस्कृति है अर्थात् संस्कृतिं कोई बाह्य प्रक्रिया न होकर मनुष्य के मानस की अन्तःकरण से सम्बन्धित है ।

वसु महोदय ने संस्कृति का अर्थ हिन्दी विश्वकोष में सभ्यता रहन सहन की रूढ़ि आदि लिखा है ।

संस्कृत शब्द कोष में संस्कृत धातु है इसी के आधार पर संस्कार शब्द है । उसमे संस्कृति का अर्थ लिखा है - सजाना, संवारना, सुरक्षित करना, पवित्र करना, मांजना, मंत्रपूत करना, शास्त्रानुसार विधि विधान के साथ संस्कार युक्त करना, अन्त में उसका अर्थ सजाव, निखार पवित्रीकरण सम्मार्जन आदि है ।

इस प्रकार संस्कृति का अर्थ मानवजीवन की सजी संवरी अथवा संशुद्धीकृत अवस्था अथवा उसके अनुकूल मानवी अन्तर्वृत्ति है । दूसरी ओर अनुभूतियों के उद्‌गार को साहित्य का नाम देते हैं । इस तरह से संस्कृति मानव जीवन के विचार आचार का संशुद्धी करण अथवा परिमार्जन है । कुछ विचारक संस्कृति को मानव समुदाय की अन्तःप्रतिभा की बाह्य अभिव्यक्ति बताते हैं ।

वैसे कहा गया है कि मानवमात्र के जितने भी आदर्श मापदण्ड है उनकी प्राप्ति के साधन का नाम संस्कृति है । मानव जीवन के आदर्श समयानुसार परिवर्तित होते है । अतः संस्कृति के स्वरूप मे भी समय समय पर परिवर्तन या बदलाव आता रहता है । परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि संस्कृति की मूल अवधारणा स्थायी होती है उसमे कभी भी परिवर्तन नही हो सकता है जो कुछ भी बदलता है वह उसका बाह्य स्वरूप होता है । सदैव आन्तरिक रूप अपरिवर्तनीय होता है ।

मानवजीवन के एक तरह के आदर्श चिरस्थायी नही होते हैं अतःकाल गत संस्कृति भी मानव की महत्तम उपलब्धि नही हो सकती है युग धर्म के अनुसार परिवर्तित आदर्शों की उपलब्धि को ही संस्कृति कहा जा सकता है । हर युग में संस्कृति के मापदण्ड बदलते रहते हैं । सभ्यता और संस्कृति मे अन्तर होता है -

सभ्यता को हम मनुष्य के जीवन के बाह्य परिप्रेक्ष्य के रूप मे देख सकते है तो संस्कृति मनुष्य की आन्तरिक परिप्रेक्ष्य का स्वरपू कही जा सकती है ।

संस्कृति मानसिक है आन्तरिक है सभ्यता बाह्य है भौतिक है - संस्कृति को अपनाने में देर लगती है पर सभ्यता सद्यः नकल की जा सकती है अफ्रीका का आदम निवासी कोट पततून पहन सकता है । युरोपियन ढंग के बंगलों में रह सकता है इसके बाद भी उसका सांस्कृतिक स्तर अंग्रेज जैसा नहीं हो सकता है । संक्षेप में संस्कृति में सभ्यता का अन्तर्भाव हो जाता है पर सभ्यता में संस्कृति का नही संस्कार रूप में अवशिष्ट सभ्यता संस्कृति बन जाती है ।[10] संस्कृति का सम्बन्ध संस्कारों से है ।

कोई भी मनुष्य किसी भी संस्कृति से बन्धा हुआ नहीं है परन्तु संस्कृति उसे अपनी पुरानी पीढियों से परम्परागत रूप में प्राप्त होती है और वह जो कुछ भी नया युग धर्म के अनुसार अपने आप में आत्मसात करता है उसे वह अपनी आनेवाली पीढियों के लिए धरोहर के रूप में छोड़कर चला जाता है । संस्कृति और सभ्यता के विभेद को लेकर भी विचार हुआ है और यह स्थापित किया गया है ।

संस्कृति हमारी आत्मोपलाब्धि है जबकि सभ्यता भौतिक उपलब्धियों का समूह है । संस्कृति वह है जो हम है सभ्यता वह है जो हमारे पास है ।

इस प्रकार सभ्यता का सम्बन्ध भौतिक परिवेश और सांसारिक सुख सुविधा से जोड़ा गया है ।

साहित्य के बारे में कहा गया है वह याने साहित्य आज से सीमित नहीं है वह अपने बीते हुए कल और आनेवाले कल को भी समेटे हुए है ।

दूसरी ओर संस्कृति का परिचय श्री प्रभुदलाल मीतल के शब्दो में -

मानव समाज के वे सब संस्कार जो लौकिक और पारलौकिक उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हुए उसके सर्वंगीण जीवन निर्माण करते हैं उसकी संस्कृति कहे जाते हैं । संस्कृति किसी भी देश जाति या समाज की आत्मा होती है इसमें उक्त देश जाति या समाज के चिन्तन मनन आचार विचा रहन सहन बोली भाषा वेशभूषा कला कौशल आदि सभी बातों का समावेश होता है ।

कई बार देखने एक ही स्थान पर अलग अलग संस्कृति की झलक पाई जाती है क्योंकि वहां पर भिन्न भिन्न स्थानों के लोग आकर रहने लगते हैं परन्तु ऐसा तभी होता है जब वे सभी अलग समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं वरना डॉ. सम्पूर्णानन्द जी ने भी कहा है -

एक ही जलवायु मे पले एक ही प्रकार के गिरि निर्झर नदी सागर को देखनेवाले एक ही प्रकार के राजनैतिक सामाजिक आर्थिक सुख दुःख भोगे हुए लोगों के चित्तों का झुकाव प्रायः एक सा होता है । यही उन लोगों की संस्कृति के निर्माण में सहायक होता है।[11]

यही नही उन्होंने संस्कृति के सम्बन्ध में गम्भीर विचार करते हुए कहा है कि निरन्तर प्रगतिशील मानव जीवन प्रकृति और मानव समाज के जिन जिन असंख्य प्रभावों व संस्कारों से संस्कृत प्रभावित होता है उन सबके सामुहिक पदार्थ को ही संस्कृति कहा जाता है।[12] संस्कृति समाज का प्राण है तत्व ही नही उसकी पथप्रदर्शिका भी है जो समाज और व्यक्ति को समुन्नत करने के साथ उसे दोषमुक्त करती है । संस्कृति के प्रमुखतत्व ये है धर्म दर्शन साहित्य संगीत कला आदि । इन विविध रूपों में संस्कृति अपने को अभिव्यक्त करती है ।[13]

भारतीय संस्कृति से हम यह तात्पर्य लगा सकते हैं कि भारतीय सीमा मे ही अंकुरित व पुष्पित संस्कृति से है । यह सत्य है कि प्रत्येक देश की संस्कृति एक दूसरे देश से थोडी भिन्न होती है परन्तु भारतीय संस्कृति ही ऐसी है जो कि पूरे विश्व में एक सी है ।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ देखने पर हमे उसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई देती है -

(1) प्राचीनता - भारतीय संस्कृति प्राचीनतम मानी जाती है ।

(2) अखण्डता - भारतीय संस्कृति समग्र देश को एक ऐसी जीवन पद्धति का बोध देता है जिसमें उस भूभाग का प्राकृतिक परिवेश मनुष्य के बाह्य और अन्तर के संस्कारों को प्रभावित करता है । भारत के प्राकृतिक परिवेश में मानवजीवन की एक विशेष संस्कार पद्धति रही है । इस संस्कार क्रम में जो अन्यतम उपलब्धियां हुई है उन्हें धर्मदर्शन साहित्य आचारनीति आदि विभागों में बांटा जा सकता है। परन्तु ये भिन्न प्रतीत होनेवाली उपलब्धियां एक ही संस्कृति शरीर के भिन्न अवयव होने से मूलतः एक ही कही जायेगी । यहां का निवासी अपनी आस्था को अपने प्राचीन तीर्थस्थलों से आज भी जोड़े हुए है यही इसकी अखण्डता का परिचय है । मानसरोवर व कैलाश आज भी हमारे लिए पवित्र है ।

(3) निरन्तरता इस संस्कृति का स्रोत निरन्तर अविरल गति से बहता रहा है - अन्य देशों की याने मिस्र, सुमेर, काबुल, युनान और रोम की संस्कृतियाँ लुप्त होकर अतीत की कहानी मात्र रह गई है । परन्तु भारतीय संस्कृति की धारा निर्बाध रूप से बहती चली आ रही है। भारत पर अनेकों आक्रमण हुए समय समय पर अनेक जातियों का प्रवेश हुआ भारत की कई बार उनके हाथों की राजनीतिक पराजय भी झेलनी पड़ी । यहां तक कि भारत को नेस्त नाबूद करने के भी प्रयास किये गये थे । परन्तु भारतीय संस्कृति का प्रवाह अविरूद्ध नहीं हुआ । विदेशी तत्वों का भारतीय जीवन में समावेश होने पर

भी भारतीय संस्कृति ने अपना मूल स्वरूप नहीं बदला । भारतीय सांस्कृतिक जीव के मूल आधार अब भी कही है जो प्राचीन काल में थे ।[14]

(4) व्यापकता - मनुष्य की प्रकृति ऐसी होती है कि वह कभी भी किसी एक वस्तु से संतुष्टि नहीं प्राप्त करता है । भारतीय प्रदेशों की यह विशेषता है कि इसे भरपूर प्रकृति का सौन्दर्यपान करने का अवसर प्राप्त हुआ है । इसके अलावा यहां मानव प्रगति को भी अपना विकास करने के पूर्ण अवसर प्राप्त हुए । यहां के निवासियों ने अपने जीवन मे अनेकों उतार चढाव देखे हैं भले ही वे धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक या सामाजिक ही क्यों न हो यहां पर सभी परिबलों न अपनी परिवर्तनों की प्रवृत्तियों का कोई अन्त नहीं दिखाई देता है । भारतीय संस्कृति इस अपरिचित ज्ञान विज्ञान की देन है ।

(5) इसके बाद हमें सादगी और शान्ति - भारतीय संस्कृति मे सादा जीवन स्तर व उच्च विचार का आदर्श सामने रखा । जीवनस्तर उन्नत करने का अर्थ यह नही है कि अनावश्यक संसारिक पदार्थों का संग्रह किया जाय वरन अपने नैतिक स्तर को ऊँचा कर सभी चीजों से अपने आपको अप्रभावित रखना है ।

(6) वचिारों की स्वतंत्रता तथा सहनशीलता - भारतीय संस्कृति मे चिन्तन की स्वतंत्रता को पूर्ण मान्यता दी गई है। यहाँ अनेक प्रकार के आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों का विकास हुआ । सभी धर्मों के प्रति सहनशीलता व विचारों की स्वतंत्रता की भावना इसमे पडी हुई है । भारतीय संस्कृति मे यही है कि वाणी का संयम होना चाहिए व धर्म के लिए उदारता होन ाचाहिए । अशोक की धर्म सहिष्णुता का आदर्श आज भी हमारा मार्गदर्शन करता है । गीता मे भगवान कृष्ण के द्वारा कहा गया है कि - सभी देवताओं को किया हुआ नमस्कार कृष्ण को ही प्राप्त होता है ।[15]

सभी धर्मों को मानसम्मान देना हमारी हिन्दु संस्कृति की विशेषता

है । सभी संप्रदायों तथा मतमतान्तरों के अनुयायी यहां परस्पर मित्रता एवं प्रेम के साथ रह रहे हैं व अपने राष्ट्र की एकता को बनाये हुए है ।

(7) समन्वय शक्ति व ग्रहणशीलता - भारतीय संस्कृति के अन्दर बहुत अधिक समन्वय करने की क्षमता है तभी उसने शक हूण, मुगल तुर्क युनानी व अंग्रेज सभीके आने पर भी उनकी संस्कृति के प्रबावों को अपने मे आत्मसात करके भी अपनी प्राचीनता को बनाये रखा व सभी बातों का समन्वय कर दिया । डाडवेल का यह कतन है कि भारतीय संस्कृति एक महा समुद्र की तरह से है जो अनेकों नदियों को अपने साथ आत्मसात करने की क्षमता रखती है ।

भारतीय संस्कृति के अनुयायी सैयद उदारता के साथ साथ दूसरों के विचारों को ग्रहण करते रहे व उसमें अपनी हीनता नही समझते हैं । ज्योतिष के क्षेत्र में उन्होंने युनानी व रोमन सिद्धान्तों को ग्रहण करके रोमक सिद्धान्त का नाम दिया - प्राचीन भारतीयों की ग्रहण शखीलता प्रसद्धि ज्योतिषी व राहामिहिर की निम्न उक्ति मे स्पष्ट समझी जा सकती है -

यद्यपि यवन म्लेच्छ है परन्तु अपने ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान के कारण वे ऋषियों की तरह पूजनी है । इसीलिए भारतीय संस्कृति की तरह पूजनीय है । इसीलिए भारतीय संस्कृति के ये गुण आज भी संसार के लिए वरदान स्वरूप है । वर्तमान समय में जब सभी ओर आदर्शों को स्थापित करने के लिए संघर्ष हो रहा है ऐसी अवस्था में भारतीय संस्कृति की समनव्यत्मक नीति विश्व को सही मार्ग दिखा सकती है ।

(8) विविधता में ऐकता - भारतीय संस्कृति विविधता मे एकता का प्रतिपादन करती है । यहां विभिन्न जातियों वाले लरोग आपसी प्रेम व भाइचारे को प्रदर्शित करती है । यहां हिमालय से कन्याकुमारी तक आन्तरिकं एकता है । इसको स्थापित करने में भाषा, साहित्य,

सामाजिक व्यवस्था ऋषि मुनि धर्म राजनीतिक सत्ता, तीर्थस्थलों आदि का महत्वपूर्ण योगदान है । इसीलिए यहां विवाह त्योहार जाति विविध देवी देवताओं आदि को समान मान्यता प्राप्त है ।

(9) धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता - भारतीय संस्कृति का विकास तपोवन व आश्रमों में हुआ अतः इसके चिंतन पर आध्यात्मिकता की स्पष्ट छाप दिखाई पडती है । नाशवान शरीर से अधिक यह पर आत्मा की अमरता तथा उसकी सर्वव्यापकता भारतीय दर्शन मे चिन्तन का विषय रही है । भारतीय संस्कृति मे समदृष्टिवाला व्यक्ति पंडित कहा गया है । आत्मवत् सर्वभूतेषुयः पाश्चितः सः पण्डितः व वसुधैवकुटुम्बकम आदर्श रहे हैं । सर्वेभवतु सुखिनः यहां का मूल मंत्र है । महाभारत का कथन है कि - जीवन में अर्थ और काम का इस प्रकार सेवन करो कि धर्म का उल्लंघन न हो । इस प्रकार जीवन मे आध्यात्मिक व भौतिक पक्षों के बीच समन्वय हुआ है । तुलसी साहित्य का अध्ययन करते समय हमे उनके साहित्य को संस्कृति की अमूल्य धरोहर स्वीकार करना ही होगा क्योंकि उनके साहित्य के अध्ययन से हमें अपनी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति की स्पष्ट झलक दिखाई देती है वैसे भी गोस्वामी तुलसी दास जी को भारतीय संस्कृति के व्याख्याता कवि और चिन्तक के रूप में केन्द्रिय स्थान प्राप्त है इस क्षेत्र में महर्षि व्यास और आद्यशंकराचार्य के साथ उनका भी नाम लिया जा सकता है ।[16]

तुलसीदास जीने अपने समय को विपरीत संस्कृतिवाली शासन व्यवस्था को परखा था उसकी बुराइयों व असदभावना वाली नीतियों को भोगा था । उन सभी को देख कर उनके कोमल हृदय में जो आघात लगते थे उनको उन्होंने सामान्य जनता के मूक हृदय की भाषा समझकर उस दोहरी न्याय व्यवस्था व दोहरे मापदण्डों के विरूद्ध अपनी सशक्त लेखनी की ताक़ात का सम्बल लेकर निरीह जनता को जो कि उस काल की व्यवस्था को अनचाहे ढो रही थी उसकी प्राचीन गरिमामय संस्कृति की याद दिलवायी जहां पर दुष्टता करनेवाले से ज्यादा दोषी दुष्टता सहन करनेवाले को माना गया है । जहां पर

शासक का चुनाव जनता की समितियां करती थी । जहां पर राजा प्रजापालक होता था । प्रजा का रक्षक ही तब प्रजा भक्षक का स्वरूप धारण करने लग जाये तो उस राज्य व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने का अधिकार हमारी प्राचीन हिन्दु संस्कृति में जन सामान्य का दिया गया है । वाल्मीकि कि और कालिदास भी अपनी काव्य कला और चिन्तन के लिए भारतीय संस्कृति के कवि माने गये हैं [17] परन्तु उनमे व तुलसी दास जी में यह मूलभूत अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है कि तुलसी दास जी के समय की अनार्य संस्कृति व कालिदास जी व वाल्मीकि जी के समय की सांस्कृतिक परिस्थिति मे जमीन आसमान का अन्तर था । वैसे भी अनुकूल परिस्थिति मे काव्य रचना करना सहज एवं सुखदायी होता है परन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी को तो अपनी निरीह व भटकी हुई प्रजा का पुनः संस्कार करना था । ऐसी अवस्था मे सारे पुराने ग्रन्थों का निचोड़ लेकर जन सामान्य के लिए उनकी ही भाषा मे सांस्कृतिक परिवेश लेकर श्री राम के महान चरित्र को संस्कृति के मानदण्ड के रूप में प्रस्तुत किया ।

तुलसी दास जी के लिए न वैसी सम्पन्नता की कल्पना सुकर थी, न वैसा राजकीय ऐश्वर्य उन्होने जनता के दुखदैन्य महामारी अकालकष्ट तथा रोग शोक का जो चित्रण कवितावली और विनयपत्रिका में किया है वह मुगल युग के इतिहास कारों की खिल्ली उड़ाता है ।[18] थोड़े से विदेशीजनों और चाटुकार सामन्तों की क्रूरता और बर्बरता की साधना के द्वारा यदि भौतिक सुखों की प्राप्ति हो सकती है तो उसे संस्कृति का मापदण्ड कैसे माना जा सकता है । इन बातों को ध्यान में रखते हुए तुलसी दास जीने अपनी रचनाओं में प्राचीन भारतीय संस्कृति के पांच हजार वर्ष पुरानी साहित्य व संस्कृति से ओतप्रोत धार्मिकता एवं संस्कारों का मिला जुला स्वरूप प्रस्तुत किया है । वे आध्यात्म के कवि है उनका आध्यात्मिक काव्य संहिताओं, श्रीमदभागवत् पुराणों और तंत्रों की परम्परा की तरह वस्तु है इसीलिए उन्होने उन सभी का निचोड़ अपनी राम-चरित मानस में प्रस्तुत किया है ।[19] यह सत्य है कि कवि अपने चारों और दृष्टि रखकर यही अपने काव्य का

सृजन करता है पर कई बार कवि अपने चारों ओर के माहौल को परे रखकर भी साहित्य का सृजन करता है तुलसी दासजी चूंकि भारत वर्ष की आध्यात्मिक संस्कृति के कवि है । यह संस्कृति साधना की वस्तु है और उन्होने उसे अपने जीवन के भीतर से कठिन तप के द्वारा सिद्ध किया था । ऋग्वेद से लेकर अपने समय तक के समस्त आध्यात्मिक चिन्तनों साधन मार्गो तथा धर्माचार्यों का अध्ययन करने के पश्चात ही उन्होने अपनी लेखनी उठाई है । चिन्तन साधना और चर्या के अंतर्व्यथा की अग्नि से तपाकर और अपनी काव्य प्रतिभा की दीप्ति देकर उन्होने भाषा के आध्यात्मिक काव्य को श्रीमद् भागवत की परम्परा से जोड़ा है ।[20] व अपने काव्य को आध्यात्मिकता का सर्वोच्च स्थान दिलवाया है ।

इस प्रकार हमें तुलसी साहित्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति की पूर्ण झलक हमें प्राप्त होती है ।

कहा गया है जो वृक्ष आकाश में जितना ऊँचा उठेगा उसकी जड़े भी धरती के भीतर उतनी ही गहरी होगी इसका तात्पर्य यह है कि जो कवि जितना अधिक राष्ट्रव्यापी चेतना जीवन संस्कार और महतनायक की कथा को लेकर चलनेवाला महाकवि निःसंदेह राष्ट्रीय जीवन की गहराइयों में प्रवेश करेगा । उसमें जाति की सम्पूर्ण इतिहास चेतना निबद्ध होगी । परम्परा का बोध उसकी सर्जना को प्रामाणिकता देगा व उसे अदृश्य जातिय सूत्रों से जोड़ेगा ।[21]

हम तुलसी दास जी के काव्य को किसी वर्ग का काव्य नही कह संकते हैं उनके काव्य का रसिक हर वर्ग का व्यक्त होता है। आबाल वृद्ध सभी रामचरित मानस के अध्येयता दिखाई देते हैकं । हर व्यक्ति उसमें अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करता है उसे अपनी संस्कृति की धरोहर पर गौरव उत्पन्न होता है उन्होंने सभी के लिए सुलभ अवधि मे काव्यरचना कर सामान्य व गरीब जनता को ईश्वर प्रापित की ओर अग्रसर किया है । उनका काव्य वर्ग का प्रतिनिधि न होकर समस्त हिन्दु जाति और संस्कृति का प्रतीक है ।[22]

तुलसी दास जी एक महान कवि थे । उन्होंने अपने काव्य मे भारतीय संस्कृति को प्रति स्थापित करने के साथ जीवन के मूल्यों को भी परखा है । उन्होंने व्यक्ति के आपसी सम्बन्धों को भी सांस्कृतिक समन्वय के साथ-साथ अपने नवीन प्रतिमान प्रदान किये हैं ।

तुलसी दास जैसे महान व्यक्ति एकाकी जीवन नही जीता है और नह ीअपने काव्य में एकलता का समावेश करता है वह सारे समाज को साथ लेकर चलता है । वे व्यापक जीवन-भूमिका के कवि होते हैं और वे अपने काव्य मे धर्म दर्शन नीति राजनीति की समग्रता मे ग्रहण करते हैं ।

तभी तो उनका साहित्य एक साथ शाश्वत जीवन और युंगजीवन से जुड़ा हुआ है । ब्रह्मराम के अवतरण की कथा पर आधारित होने के कारण वह मानवीय चेतना के आध्यात्मिक पक्षों को स्पर्श करता है तो उसके साथ कलियुग और राम राज्य की कल्पना मे म्लेच्छो और बर्बरों के रूप में लगभग तीन सो वर्षों के मुसलमान शासन का भी समीक्षात्मक पूर्वाभाष हमे दे देता है । निःसंदेह उसमें तत्कालीन हिन्दु जनता की चेतना प्रतिभासित है जो उत्पीड़न और अत्याचार से परित्रण चाहती है । और उस प्राचीन मिथक का सहारा लेती है जिसमें पृथ्वी देवताओं के पास पहुँच कर अपनी दुःख गाथा वर्णित करती है व उनसे सहायता चाहती है फलस्वरूप विष्णु का अवतार होता है ।

रामकथा के आरम्भ में रावण के प्रचण्ड प्रताप और अकल्पित अत्याचार की भूमिका बांधकर कवि तुलसी दास जीने उसे अपने युग का ही नही तत्कालीन हिन्दु चेतना का सत्य भी बना देता है । निश्चय ही यह अवतरण ''रामचरित-मानस'' के रूप में तुलसी के मानस में हुआ है, परन्तु कवि ने जिस निःसहायता और त्राता पिता अथवा सवामी के रूप में संरक्षक की खोज की वह उस युग की पीड़ा थी उस काल की आसुरी प्रवृत्तियों और कृत्यों का चित्रण इतना सटीक और सागोपांग नही हो सकता था । तुलसी दास ने भारतीय

संस्कृति का सहारा लेकर उस काल को चित्रित करा है परन्तु उसे कलिकाल का स्वरूप प्रदान किया है ।

तुलसी साहित्य मे हमे भारतीय संस्कृति का वह विराट संगम दिखलाई देता है जिसने भारत वर्ष खो सच्चे अर्थो मे सांस्कृतिक तीर्थ बना दिया है ।